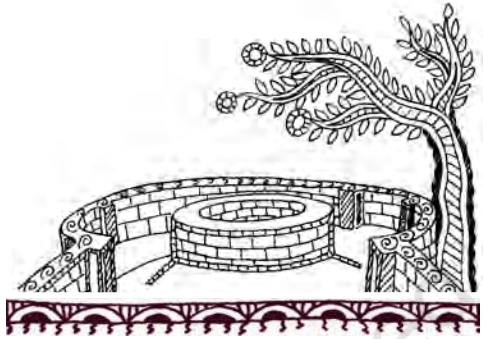




11067CH02



राजस्थान की रजत बूँदें

- अनुपम मिश्र

प सीने में तरबतर चेलवांजी कुई के भीतर काम कर रहे हैं। कोई तीस-पैंतीस हाथ गहरी खुदाई हो चुकी है। अब भीतर गरमी बढ़ती ही जाएगी। कुई का व्यास, घेरा बहुत ही संकरा है। उखरूँ¹ बैठे चेलवांजी की पीठ और छाती से एक-एक हाथ की दूरी पर मिट्टी है। इतनी संकरी जगह में खोदने का काम कुल्हाड़ी या फावड़े से नहीं हो सकता। खुदाई यहाँ बसौली से की जा रही है। बसौली छोटी डंडी का छोटे फावड़े जैसा औज़ार होता है। नुकीला फल लोहे का और हत्था लकड़ी का।

कुई की गहराई में चल रहे मेहनती काम पर वहाँ की गरमी का असर पड़ेगा। गरमी कम करने के लिए ऊपर ज़मीन पर खड़े लोग बीच-बीच में मुट्ठी भर रेत बहुत जोर के साथ नीचे फेंकते हैं। इससे ऊपर की ताज़ी हवा नीचे फिकाती है और गहराई में जमा दमघोंटू गरम हवा ऊपर लौटती है। इतने ऊपर से फेंकी जा रही रेत के कण नीचे काम कर रहे चेलवांजी के सिर पर लग सकते हैं इसलिए वे अपने सिर पर कांसे, पीतल या अन्य किसी धातु का एक बर्तन टोप की तरह पहने हुए



1. उकड़ूँ बैठना, पंजे के बल घुटने मोड़ कर बैठना।

चेलवांजी यानी चेजारो, कुई की खुदाई और एक विशेष तरह की चिनाई करने वाले दक्षतम लोग। यह काम चेजा कहलाता है। चेजारो जिस कुई को बना रहे हैं, वह भी कोई साधारण ढाँचा नहीं है। कुई यानी बहुत ही छोटा-सा कुआँ। कुआँ पुंलिंग है, कुई स्त्रीलिंग। यह छोटी भी केवल व्यास में ही है। गहराई तो इस कुई की कहीं से कम नहीं। राजस्थान में अलग-अलग स्थानों पर एक विशेष कारण से कुंडियों की गहराई कुछ कम-ज्यादा होती है।

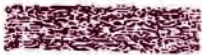
मरुभूमि में रेत का विस्तार और गहराई अथाह है। यहाँ वर्षा अधिक मात्रा में भी हो तो उसे भूमि में समा जाने में देर नहीं लगती। पर कहीं-कहीं मरुभूमि में रेत की सतह के नीचे प्रायः दस-पंद्रह हाथ से





ऐसे क्षेत्रों में बड़े कुएँ खोदते समय मिट्टी में हो रहे परिवर्तन से खड़िया पट्टी का पता चल जाता है। बड़े कुओं में पानी तो डेढ़ सौ-दो सौ हाथ पर निकल ही आता है पर वह प्रायः खारा होता है। इसलिए पीने के काम में नहीं आ सकता। बस तब इन क्षेत्रों में कुंइयाँ बनाई जाती हैं। पट्टी खोजने में पीढ़ियों का अनुभव भी काम आता है। बरसात का पानी किसी क्षेत्र में एकदम 'बैठे' नहीं तो पता चल जाता है कि रेत के नीचे ऐसी पट्टी चल रही है।

रेत के कण बहुत ही बारीक होते हैं। वे अन्यत्र मिलने वाली मिट्टी के कणों की तरह एक दूसरे से चिपकते नहीं। जहाँ लगाव है, वहाँ अलगाव भी होता है। जिस मिट्टी के कण परस्पर चिपकते हैं, वे अपनी जगह भी छोड़ते हैं और इसलिए वहाँ कुछ स्थान खाली छूट जाता है। जैसे दोमट या काली मिट्टी के क्षेत्र में गुजरात, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, बिहार आदि में वर्षा बंद होने के बाद धूप निकलने पर मिट्टी के कण चिपकने लगते हैं और धरती में, खेत और आँगन में दरारें पड़ जाती हैं।



पालरानी और पातालपानी के बीच पानी का तीसरा रूप है, रेजाणीपानी। धरातल से नीचे उतरा लेकिन पाताल में न मिल पाया पानी रेजाणी है। वर्षा की मात्रा नापने में भी इंच

रेजाणीपानी खड़िया पट्टी के कारण पातालीपानी से अलग बना रहता है। ऐसी पट्टी के अभाव में रेजाणीपानी धीरे-धीरे नीचे जाकर पातालीपानी में मिलकर अपना विशिष्ट रूप खो देता है। यदि किसी जगह भूजल, पातालीपानी खारा है तो रेजाणीपानी भी उसमें मिलकर खारा हो जाता है।

इस विशिष्ट रेजाणीपानी को समेट सकने वाली कुई बनाना सचमुच एक विशिष्ट कला है। चार-पाँच हाथ के व्यास की कुई को तीस से साठ-पैंसठ हाथ की गहराई तक उतारने वाले चेजारो कुशलता और सावधानी की पूरी ऊँचाई नापते हैं।

चेजो यानी चिनाई का श्रेष्ठतम काम कुंई का प्राण है। इसमें थोड़ी-सी भी चूक चेजारो के प्राण ले सकती है। हर दिन थोड़ी-थोड़ी खुदाई होती है, डोल से मलबा निकाला जाता है और फिर आगे की खुदाई रोक कर अब तक हो चुके काम की चिनाई की जाती है ताकि मिट्टी भस्के, धँसे नहीं।

बीस-पच्चीस हाथ की गहराई तक जाते-जाते गरमी बढ़ती जाती है और हवा भी कम होने लगती है। तब ऊपर से मुट्ठी भर-भर कर रेत नीचे तेजी से फेंकी जाती है- मरुभूमि में जो हवा रेत के विशाल टीलों तक को यहाँ से वहाँ उड़ा देती है, वही हवा यहाँ कुई की गहराई में एक मुट्ठी रेत से उड़ने लगती है और पसीने में नहा रहे चेलवांजी को राहत दे जाती है। कुछ जगहों पर कुई बनाने का यह कठिन काम और भी कठिन हो जाता है। किसी-किसी जगह ईंट की चिनाई से मिट्टी को रोकना संभव नहीं हो पाता। तब कुई को रस्से से 'बाँधा' जाता है।



कुंडी पर सजगता का पहरा

पहले दिन कुई खोदने के साथ-साथ खींप¹ नाम की घास का ढेर जमा कर लिया जाता है। चेजारो खुदाई शुरू करते हैं और बाकी लोग खींप की घास से कोई तीन अंगुल मोटा रस्सा बटने लगते हैं। पहले दिन का काम पूरा होते-होते कुई कोई दस हाथ



1. एक प्रकार की घास जिसके रेशों से रस्सी बनाई जाती है।

अगले दिन फिर कुछ हाथ मिट्टी खोदी जाती है और रस्से की पहले दिन जमाई गई कुंडली दूसरे दिन खोदी गई जगह में सरका दी जाती है। ऊपर छूटी दीवार में अब नया रस्सा बाँधा जाता है। रस्से की कुंडली को टिकाए रखने के लिए बीच-बीच में कहीं-कहीं चिनाई भी करते जाते हैं।

कहीं-कहीं न तो ज्यादा पत्थर मिलता है न खींप ही। लेकिन रेजाणीपानी है तो वहाँ भी कुंडियाँ जरूर बनती हैं। ऐसी जगहों पर भीतर की चिनाई लकड़ी के लंबे लट्टों से की जाती है। लट्टे अरणी, बण (कैर), बावल या कुंबट के पेड़ों की डगालों¹ से बनाए जाते हैं। इस काम के लिए सबसे उम्दा लकड़ी अरणी की ही है पर उम्दा या मध्यम दर्जे की लकड़ी न मिल पाए तो आक तक से भी काम लिया जाता है।



Reprint 2025-26

नए लोगों को तो समझ में भी नहीं
आएगा कि यहाँ कुई खुद रही है

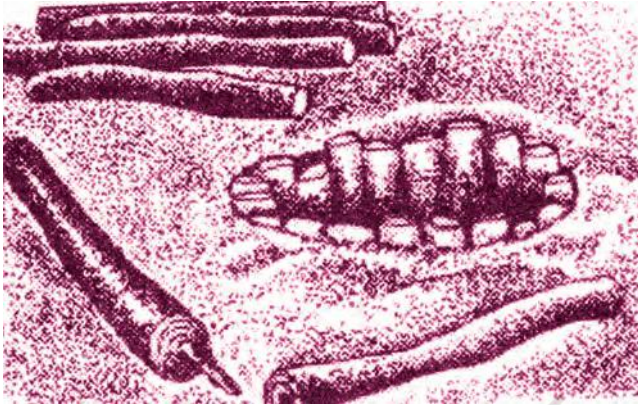


नीचे खुदाई और चिनाई का काम कर रहे चेलवांजी को मिट्टी की खूब परख रहती है। खड़िया पत्थर की पट्टी आते ही सारा काम रुक जाता है। इस क्षण नीचे धार लग जाती है। चेजारो ऊपर आ जाते हैं।

कुई की सफलता यानी सजलता उत्सव का अवसर बन जाती है। यों तो पहले दिन से काम करने वालों का विशेष ध्यान रखना यहाँ की परंपरा रही है, पर काम पूरा होने पर तो विशेष भोज का आयोजन होता था। चेलवांजी को विदाई के समय तरह-तरह की भेंट दी जाती थी। चेजारो के साथ गाँव का यह संबंध उसी दिन नहीं टूट जाता था। आच प्रथा¹ से उन्हें वर्ष-भर के तीज-त्योहारों में, विवाह जैसे मंगल



1. इस प्रथा के अंतर्गत कुई खोदने वालों को वर्ष भर सम्मानित किया जाता है



अवसरों पर नेग, भेंट दी जाती और फ़सल आने पर खलियान में उनके नाम से अनाज का एक अलग ढेर भी लगता था। अब सिर्फ़ मजदूरी देकर भी काम करवाने का रिवाज आ गया है।

कुई के निर्माण में लड़े का प्रयोग

कई जगहों पर

चेजारी के बदले सामान्य गृहस्थ भी इस विशिष्ट कला में कुशल बन जाते थे। जैसलमेर के अनेक गाँवों में पालीवाल ब्राह्मणों और मेघवालों (अब अनुसूचित जाति के अंतर्गत) के हाथों से सौ-दो सौ बरस पहले बनी पार या कुंइयाँ आज भी बिना थके पानी जुटा रही हैं।

कुई का मुँह छोटा रखने के तीन बड़े कारण हैं। रेत में जमा नमी से पानी की बूँदें बहुत धीरे-धीरे रिसती हैं। दिन भर में एक कुई मुश्किल से इतना ही पानी जमा कर पाती है कि उससे दो-तीन घड़े भर सकें। कुई के तल पर पानी की मात्रा इतनी कम होती है कि यदि कुई का व्यास बड़ा हो तो कम मात्रा का पानी ज़्यादा फैल जाएगा और तब उसे ऊपर निकालना संभव नहीं होगा। छोटे व्यास की कुई में धीरे-धीरे रिस कर आ रहा पानी दो-चार हाथ की ऊँचाई ले लेता है। कई जगहों पर कुई से पानी निकालते समय छोटी बाल्टी के बदले छोटी चड़स का उपयोग भी इसी कारण से किया जाता है। धातु की बाल्टी पानी में आसानी से डूबती नहीं। पर मोटे कपड़े या चमड़े की चड़स के मुँह पर लोहे का वज़नी कड़ा बँधा होता है। चड़स पानी से टकराता है, ऊपर का वज़नी भाग नीचे के भाग पर गिरता है और इस तरह कम मात्रा के पानी में भी ठीक से डूब जाता है। भर जाने के बाद ऊपर उठते ही चड़स अपना पूरा आकार ले लेता है।

पिछले दौर में ऐसे कुछ गाँवों के आसपास से सड़कें निकली हैं, ट्रक दौड़े हैं। ट्रकों की फटी टायर से भी छोटी चडसी बनने लगी हैं।

कुई के व्यास का संबंध इन क्षेत्रों में पड़ने वाली तेज़ गरमी से भी है। व्यास बढ़ा हो तो कुई के भीतर पानी ज़्यादा फैल जाएगा। बढ़ा व्यास पानी को भाप बनकर उड़ने से रोक नहीं पाएगा।

कुई को, उसके पानी को साफ़ रखने के लिए उसे ढँककर रखना जरूरी है। छोटे मुँह को ढँकना सरल होता है। हरेक कुई पर लकड़ी के बने ढक्कन ढँके मिलेंगे। कहीं-कहीं खस की टट्टी की तरह घास-फूस या छोटी-छोटी टहनियों से बने ढक्कनों का भी उपयोग किया जाता है। जहाँ नई सड़कें निकली हैं और इस तरह नए और अपरिचित लोगों की आवक-जावक भी बढ़ गई है, वहाँ अमृत जैसे इस मीठे पानी की सुरक्षा भी करनी पड़ती है। इन इलाकों में कई कुइयों के ढक्कनों पर छोटे-छोटे ताले भी लगने लगे हैं। ताले कुई के ऊपर पानी खींचने के लिए लगी घिरनी, चकरी पर भी लगाए जाते हैं।

कुई गहरी बने तो पानी खींचने की सुविधा के लिए उसके ऊपर घिरनी या चकरी भी लगाई जाती है। यह गरेड़ी, चरखी या फरेड़ी भी कहलाती है। फरेड़ी लोहे की दो भुजाओं पर भी लगती है। लेकिन प्रायः यह गुलेल के आकार के एक मजबूत तने को काट कर, उसमें आर-पार छेद बना कर लगाई जाती है। इसे ओड़ाक कहते हैं। ओड़ाक और चरखी के बिना इतनी गहरी और संकरी कुई से पानी निकालना बहुत कठिन काम बन सकता है। ओड़ाक और चरखी चड़सी का यहाँ-वहाँ बिना टकराए सीधे ऊपर तक लाती है, पानी बीच में छलक कर गिरता नहीं। वज्रन खींचने में तो इससे सुविधा रहती ही है।

खड़िया पत्थर की पट्टी एक बड़े भाग से गुज़रती है इसलिए उस पूरे हिस्से में एक के बाद एक कुंई बनती जाती है। ऐसे क्षेत्र में एक बड़े साफ़-सुथरे मैदान में तीस-चालीस कुंइयाँ भी मिल जाती हैं। हर घर की एक कुंई। परिवार बड़ा हो तो एक से अधिक भी।

निजी और सार्वजनिक संपत्ति का विभाजन करने वाली मोटी रेखा कुई के मामले में बड़े विचित्र ढंग से मिट जाती है। हरेक की अपनी-अपनी कुई है। उसे बनाने और

उससे पानी लेने का हक उसका अपना हक है। लेकिन कुंई जिस क्षेत्र में बनती है, वह गाँव-समाज की सार्वजनिक ज़मीन है। उस जगह बरसने वाला पानी ही बाद में वर्ष-भर नमी की तरह सुरक्षित रहेगा और इसी नमी से साल-भर कुंइयों में पानी भरेगा। नमी की मात्रा तो वहाँ हो चुकी वर्षा से तय हो गई है। अब उस क्षेत्र में बनने वाली हर नई कुंई का अर्थ है, पहले से तय नमी का बँटवारा। इसलिए निजी होते हुए भी सार्वजनिक क्षेत्र में बनी कुंइयों पर ग्राम समाज का अंकुश लगा रहता है। बहुत ज़रूरत पड़ने पर ही समाज नई कुंई के लिए अपनी स्वीकृति देता है।

हर दिन सोने का एक अंडा देने वाली मुर्गी की चिरपरिचित कहानी को ज़मीन पर उतारती है कुंई। इससे दिन भर में बस दो-तीन घड़ा मीठा पानी निकाला जा सकता है। इसलिए प्रायः पूरा गाँव गोधूलि बेला में कुंइयों पर आता है। तब मेला-सा लग जाता है। गाँव से सटे मैदान में तीस-चालीस कुंइयों पर एक साथ घूमती घिरनियों का स्वर गोचर से लौट रहे पशुओं की घंटियों और रंभाने की आवाज़ में समा जाता है। दो-तीन घड़े भर जाने पर डोल और रस्सियाँ समेट ली जाती हैं। कुंइयों के ढक्कन वापस बंद हो जाते हैं। रात-भर और अगले दिन-भर कुंइयाँ आराम करेंगी।

रेत के नीचे सब जगह खड़िया की पट्टी नहीं है, इसलिए कुंई भी पूरे राजस्थान में नहीं मिलेगी। चुरू, बीकानेर, जैसलमेर और बाड़मेर के कई क्षेत्रों में यह पट्टी चलती है और इसी कारण वहाँ गाँव-गाँव में कुंइयाँ ही कुंइयाँ हैं। जैसलमेर ज़िले के एक गाँव खड़ेरों की ढाणी में तो एक सौ बीस कुंइयाँ थीं। लोग इस क्षेत्र को छह-बीसी (छह गुणा बीस) के नाम से जानते थे। कहीं-कहीं इन्हें पार भी कहते हैं। जैसलमेर तथा बाड़मेर के कई गाँव पार के कारण ही आबाद हैं और इसीलिए उन गाँवों के नाम भी पार पर ही हैं। जैसे जानरे आलो पार और सिरगु आलो पार।

अलग-अलग जगहों पर खड़िया पट्टी के भी अलग-अलग नाम हैं। कहीं यह चारोली है तो कहीं धाधड़ो, धड़धड़ो, कहीं पर बिट्टू रो बल्लियो के नाम से भी जानी जाती है तो कहीं इस पट्टी का नाम केवल 'खड़ी' भी है।

और इसी खड़ी के बल पर खारे पानी के बीच मीठा पानी देती खड़ी रहती है कुंई।

